International Journal of Research in Hindi
www.hindijournal.in
ISSN: 2582-3493
Received: 10-10-2025, Accepted: 09-11-2025, Published: 24-11-2025
Volume 7, Issue 2, 2025, Page No. 40-43

बाबा नागार्जुन की कविता में लोकचेतना एवं जनसंघर्ष की अभिव्यक्ति

विशाल प्रताप मित्र
हिंदी विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय वाराणसी, उत्तर प्रदेश, भारत

सारांश
बाबा नागार्जुन हिंदी कविता के वो युगप्रवर्तक कवि रहे हैं जिनकी रचनाएँ लोकचेतना एवं जनसंघर्ष की सजीव अभिव्यक्ति बनकर उभरती हैं। उन्होंने कविता को समाज के परिवर्तन का माध्यम बनाया और अपने शब्दों को जनता की आवाज़ में रूपांतरित किया। नागार्जुन का कवि व्यक्तित्व लोकजीवन, किसान आंदोलनों, सामाजिक विषमता के साथ–साथ राजनीतिक अन्याय से गहनता से जुड़ा हुआ था। उनकी कविताएँ यथा अकाल और उसके बाद, भस्म हो गया लोहा, इंदु जी, इंदु जी क्या हुआ आपको, मैं मिलिट्री का बूढ़ा घोड़ा हूँ इत्यादि उस यथार्थ को व्यक्त करती हैं जहाँ आम जन का दुख, संघर्ष, प्रतिरोध आदि जीवंत हो उठता है। नागार्जुन की कविता में लोकभाषा–जनभाषा का स्वाभाविक प्रयोग उनकी जनसंपृक्ति को और सशक्त बनाता है। वे जनकवि इस अर्थ में हैं कि उनकी कविता में नारे नहीं अपितु जनता की सिसकियाँ एवं हँसी दोनों एक साथ सुनाई देती हैं। उनका व्यंग्य कटु नहीं बल्कि जागृति का माध्यम है; उनकी करुणा दुर्बलता नहीं, प्रतिरोध की शक्ति है। बाबा नागार्जुन के काव्य में लोकजीवन की पीड़ा एवं प्रतिरोध का ऐसा संगम दिखाई देता है जो हिंदी कविता को लोकतांत्रिक संवेदना और सामाजिक यथार्थ का सशक्त स्वर प्रदान करता है। इस शोधालेख में नागार्जुन की कविताओं के माध्यम से यह विश्लेषण करने का प्रयत्न किया गया है कि कैसे उन्होंने साहित्य को जनसंघर्ष, लोकभाषा तथा समाज–सुधार की चेतना से जोड़ा और उसे युग–साक्षी बना दिया।

मूल शब्दः लोकचेतना, जनसंघर्ष, नागार्जुन, जनकवि, व्यंग्य, जनभाषा, सामाजिक यथार्थ

भूमिका
बाबा नागार्जुन (1911–1998) हिंदी और मैथिली दोनों भाषाओं के अद्वितीय कवि थे जिन्हें भारतीय साहित्य में 'जनकवि', 'युग–साक्षी' तथा 'लोकचेतना के प्रतिनिधि' के रूप में जाना जाता है। उनकी कविताएँ सीधे जनता से संवाद करती हैं जिनमें किसी प्रकार का कृत्रिम बौद्धिक प्रदर्शन नहीं बल्कि जीवन की सहजता, संघर्ष एवं लोक की गंध है। नागार्जुन की कविता की सबसे बड़ी शक्ति यह है कि वह शास्त्रीयता के सीमित दायरे से बाहर निकलकर जनता की बोली, भाषा, संवेदना आदि को अपनाती है। उनकी कविताओं में लोकभाषा अभिव्यक्ति का माध्यम होने के साथ ही जनता की चेतना का भी वाहक बन जाती है। नागार्जुन का कवि–जीवन भारत की राजनीतिक हलचलों, स्वतंत्रता आंदोलन के पश्चात् उभरे सामाजिक संघर्षों, किसानों के आंदोलनों तथा आम आदमी के जीवन से गहराई से जुड़ा था। वे केवल कवि नहीं समाज के साक्षी थे, एक ऐसे साक्षी जो न तो अन्याय को मौन स्वीकार करता था, न ही सत्ता के सम्मुख झुकता था। जैसा कि उन्होंने स्वयं कहा "मैं जन–मन का कवि हूँ, जनता मेरी प्रेरणा है, उसकी पीड़ा मेरा विषय है" (नागार्जुन, 1954)। उनका कवि–संकल्प था कि साहित्य को जनता की चेतना एवं संघर्ष की भूमि पर उतारा जाए जिससे कि कविता केवल मनोरंजन नहीं अपितु सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया का भी हिस्सा बने। नागार्जुन की कविता में शोषण के विरुद्ध प्रतिरोध तथा मानवीय पीड़ा के भीतर छिपी जिजीविषा दोनों मिलकर एक सशक्त जनस्वर रचते हैं। उनकी कविताएँ यथा 'भस्म हो गया लोहा', 'अकाल और उसके बाद', 'मैं मिलिट्री का बूढ़ा घोड़ा हूँ', तथा 'इंदु जी, इंदु जी क्या हुआ आपको?' भारतीय समाज की सामाजिक–राजनीतिक विसंगतियों और आम आदमी की बेबसी को उजागर करती हैं। 'अकाल और उसके बाद' में कवि ने किसान–मजदूर के दर्द को लोकभाषा की सादगी में गहराई से व्यक्त किया "खेतों में फसलें जल गईं, भूख ने हर आहट निगल ली / और कवि के शब्द भी सूख गए जैसे प्यासे खेतों की मिट्टी।" यह पंक्ति न केवल एक घटना का वर्णन करती है अपितु उस सामाजिक यथार्थ की साक्षी है जहाँ मनुष्य तथा प्रकृति दोनों शोषण के शिकार हैं। नागार्जुन की कविता में करुणा निराशा नहीं, संघर्ष की प्रेरणा है। "भस्म हो गया लोहा" कविता में वे पूंजीवादी समाज की क्रूरता पर कटाक्ष करते हुए कहते हैं "भस्म हो गया लोहा, बची रह गई राख / उसमें भी छिपी है अंगारों की आह।" यह पंक्ति उनके रचनात्मक स्वभाव की गहराई को प्रकट करती है जहाँ विनाश में भी आशा की चिनगारी बची रहती है। "मैं मिलिट्री का बूढ़ा घोड़ा हूँ" में नागार्जुन ने आधुनिकता के खोखले गर्व तथा नैतिक पतन पर व्यंग्य करते हुए उस वर्ग को आईना दिखाया जो देशभक्ति के नाम पर स्वार्थ साधता है। उन्होंने लिखा "अब नहीं दौड़ता मैं रण में, पर देखो / मेरी पीठ पर अब भी हैं अपने देश के निशान।" इन पंक्तियों में एक बूढ़े सैनिक के माध्यम से कवि ने उस आम आदमी का प्रतीकात्मक चित्र खींचा है जो समाज के लिए सब कुछ देता है तथापि बदले में उपेक्षा मात्र ही पाता है। नागार्जुन की कविताएँ इसलिए विशिष्ट हैं क्योंकि वे राजनीति की आलोचना नहीं करतीं अपितु मानवीय संवेदना की पुनर्स्थापना भी करती हैं। उनके यहाँ लोकचेतना कोई अमूर्त विचार नहीं बल्कि जीवन का स्पंदन है वह खेतों में, चौपालों में, रेल की पटरियों पर और भूख की पुकार में सुनाई देती है। यही कारण है कि नागार्जुन के शब्द जनता के मन से सीधे संवाद करते हैं। इस आलेख का उद्देश्य नागार्जुन की कविता में लोकचेतना एवं जनसंघर्ष की अभिव्यक्ति का समाजशास्त्रीय–साहित्यिक विश्लेषण करना है जिससे यह स्पष्ट हो सके कि उन्होंने कविता को किस तरह सामाजिक परिवर्तन का हथियार बनाया और जन–संवेदना को साहित्य की आत्मा में रूपांतरित किया।

लोकचेतना की अवधारणा और नागार्जुन की जनदृष्टि
'लोकचेतना' शब्द केवल लोकगीतों, लोककथाओं अथवा ग्रामीण जीवन की सीमित परिधि का परिचायक नहीं है बल्कि यह जनजीवन की सामूहिक संवेदना, जीवन–संघर्ष के साथ ही अनुभवजन्य सत्य की भी अभिव्यक्ति है। बाबा नागार्जुन की कविता इसी व्यापक लोकचेतना की जड़ से पोषित है। उनके यहाँ 'लोक' का अर्थ गाँव या परंपरा नहीं समाज का वह जीवंत

वर्ग है जो श्रम करता है, संघर्ष करता है तथा अन्याय के विरुद्ध आवाज़ उठाता है। नागार्जुन ने अपने काव्य–सृजन को इसी जनता की पीड़ा एवं जिजीविषा से जोड़ा। वे कहते हैं "मेरी कविता में जो भी स्वर है, वह जनता के गले से उठा हुआ स्वर है।" (अग्रवाल, 1998)। यह कथन उनके पूरे काव्य–संसार का ध्रुवतारा है। नागार्जुन के यहाँ किसान, मजदूर, स्त्री, दलित, निम्नवर्ग तथा साधारण नागरिक सब अपनी–अपनी आवाज़ में उपस्थित हैं। उनकी कविताएँ इस बात का प्रमाण हैं कि उन्होंने लोकजीवन को केवल विषय नहीं बनाया अपितु लोकचेतना को कविता की आत्मा के रूप में प्रतिष्ठित किया। उनकी रचनाओं में लोक का स्वर करुणा और प्रतिरोध दोनों रूपों में सुनाई देता है। नागार्जुन की कविता का लोक उसी जनता से बनता है जो समाज की रीढ़ है जो खेतों में अन्न उगाती है पर स्वयं भूखी रहती है; जो ईंटें गढ़ती है पर अपना घर नहीं बना पाती। 'अकाल और उसके बाद' कविता में कवि ने इसी जनता की पीड़ा का हृदयस्पर्शी चित्र खींचा है "कई दिनों तक चूल्हा रोया, चक्की रही उदास / कई दिनों तक कानी कुतिया सोई उसके पास।" (मिश्र, 1982)। इन पंक्तियों में न केवल अकाल का यथार्थ है अपितु इसके साथ ही वह सामूहिक करुणा भी है जो समाज की संवेदना को झकझोर देती है। नागार्जुन इस पीड़ा को आँसू में नहीं, संघर्ष में बदलते हैं। यही लोकचेतना का सार है जहाँ वेदना से चेतना और चेतना से परिवर्तन उपजता है। 'भस्म हो गया लोहा' कविता में उन्होंने पूंजीवादी शोषण तथा औद्योगिक समाज की क्रूरता पर तीखा प्रहार किया। वे लिखते हैं "भस्म हो गया लोहा, बची रह गई राख / उसमें भी छिपी है अंगारों की आह।" यह औद्योगिकीकरण की आलोचना मात्र नहीं बल्कि मनुष्य की श्रमशील आत्मा की पुकार है। नागार्जुन का लोक यहाँ पराजित नहीं होता वह राख में भी अंगारों की तरह जलता रहता है। उनकी लोकदृष्टि में 'लोक' केवल जातीय अथवा भौगोलिक इकाई नहीं बल्कि सार्वभौमिक मानवीय अनुभव का प्रतीक है। उन्होंने दलितों, स्त्रियों और वंचितों के माध्यम से उस लोक को स्वर दिया जो सदियों से मौन था। उनकी कविता 'औरत' में स्त्री को दया की नहीं, शक्ति की प्रतिमा के रूप में प्रस्तुत किया गया है "मैं भी धरती हूँ, बीज जनूँ, पर फसल कोई और काटे।" नागार्जुन का यह स्वर लोकचेतना को नारी–अस्मिता से जोड़ता है। इसी तरह वे दलित वर्ग की पीड़ा को सामाजिक ढांचे की कठोरता के साथ जोड़ते हैं। उनके यहाँ किसान–मजदूर नायक हैं जो समाज के निचले पायदान से उठकर यथार्थ का नेतृत्व करते हैं। नागार्जुन ने वर्ग–संघर्ष तथा समानता की चेतना को लोक की भाषा में रूपांतरित किया। नागार्जुन की लोकचेतना का सबसे जीवंत पक्ष यह है कि वह करुणा के साथ–साथ प्रतिरोध की भी चेतना जगाती है। वे जनता को उसकी सामूहिक शक्ति का बोध कराते हैं। उनकी कविता का लोक जागरूक, विचारशील और संघर्षशील है। यह लोक किसी परंपरागत अनुकरण का प्रतीक नहीं अपितु परिवर्तन की ऊर्जा है। नागार्जुन के यहाँ लोक का अर्थ जीवन के प्रति गहरी आस्था से है वे जनता में वही शक्ति देखते हैं जो इतिहास को दिशा देती है। उन्होंने लिखा "जनता जब जागेगी, / तब मिटेगा अन्याय, / शब्द नहीं, कर्म से फूटेगा नया प्रकाश।" यह उनकी जनदृष्टि का मूल स्वर है। नागार्जुन की कविता में लोकभाषा–लोकजीवन एक–दूसरे से अभिन्न हैं। उनकी भाषा न कोई साहित्यिक चमत्कार दिखाती है, न सजावट का बोझ उठाती है। यह सीधी, सहज एवं बोलचाल की भाषा है, जो जनता की संवेदना से उपजी है। यही कारण है कि नागार्जुन की कविता में प्रत्येक व्यक्ति अपना चेहरा देख सकता है। उन्होंने कविता को वर्ग–संघर्ष, समानता तथा मानवीय करुणा का उपकरण बनाया। उनका काव्य इस विश्वास पर टिका है कि जब तक समाज में अन्याय रहेगा तब तक कविता की ज़रूरत बनी रहेगी। नागार्जुन के लिए कविता केवल शब्दों की कलाकारी नहीं, जीवन की पुनर्सृष्टि है। उनके यहाँ लोकचेतना सिर्फ जनता की बात कहने का उपक्रम नहीं अपितु जनता के साथ चलने, उसके साथ जीने एवं उसकी पीड़ा को अपनी आत्मा में महसूस करने का भाव है। इसीलिए वे सच्चे अर्थों में जनकवि हैं जो जनता से सीखते हैं, जनता के लिए लिखते हैं और जनता की चेतना को साहित्य की आत्मा में बदल देते हैं।

जनसंघर्ष तथा राजनीतिक चेतना का रूप

नागार्जुन की कविता सामाजिक–राजनीतिक दोनों मोर्चों पर एक साथ सक्रिय दिखाई देती है। वे केवल भावनाओं अथवा कल्पनाओं के कवि नहीं बल्कि अपने समय के सामाजिक यथार्थ, राजनीतिक विडंबनाओं एवं जनसंघर्षों के सजग साक्षी हैं। उन्होंने कविता को मनोरंजन का साधन कि जगह प्रतिरोध का हथियार बनाया ऐसा हथियार जो जनता की आवाज़ बनकर सत्ता, शोषण तथा अन्याय की जड़ें हिला देता है। नागार्जुन के लिए 'संघर्ष' कोई खोखला नारा मात्र नहीं बल्कि जनजीवन की जीवंत अभिव्यक्ति है। उनके लिए कविता जन–प्रतिरोध की वह धारा है जो अन्याय के विरुद्ध खड़ी होती है और समाज में नई चेतना जगाती है। उन्होंने साहित्य को सामाजिक क्रांति का माध्यम बनाया एवं जनता को अपने अधिकारों के प्रति जागरूक करने की जिम्मेदारी निभाई। उनकी कविता का संघर्ष न केवल राजनीतिक सत्ता के खिलाफ है बल्कि उस सामाजिक ढांचे के खिलाफ भी है जो मनुष्य को उसकी गरिमा से वंचित करता है। इसीलिए नागार्जुन की कविता 'जनता की कविता' कही जाती है वह जनभाषा में जनता के लिए और जनता की ओर से बोलती है (द्विवेदी, 2001)। उनकी प्रसिद्ध कविता "इंदु जी, इंदु जी क्या हुआ आपको?" तत्कालीन राजनीतिक सत्ता के प्रति तीखा व्यंग्य है जिसमें उन्होंने तत्कालीन प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी से सीधे संवाद के रूप में जनता की निराशा, आक्रोश एवं सवालों को स्वर दिया। वे लिखते हैं "इंदु जी, इंदु जी क्या हुआ आपको? / सत्ता के मद में चूर हो गईं क्या आप भी? / जिनसे आपने वादे किए, आज वे भूखे हैं अब भी!" यह कविता सिर्फ किसी व्यक्ति विशेष पर आक्षेप नहीं उस सत्ता–मानसिकता की आलोचना है जो लोकतंत्र के नाम पर जनता से विमुख हो जाती है। नागार्जुन का व्यंग्य यहाँ करुणा से जुड़ा हुआ है वे आलोचना इसलिए करते हैं क्योंकि उन्हें जनमानस की पीड़ा का अहसास है। उन्होंने राजनीति में नैतिकता–मानवता के पतन को गहराई से देखा और इसीलिए उनकी कविताएँ विरोध के साथ जागरण का भी आह्वान हैं। 'जयप्रकाश पर कविताएँ' नागार्जुन की लोकतांत्रिक आस्था का एक सशक्त उदाहरण हैं। उन्होंने जयप्रकाश नारायण के नेतृत्व में हुए आंदोलन को केवल राजनीतिक उथल–पुथल नहीं माना अपितु जनता की चेतना के पुनर्जन्म के रूप में देखा। वे लिखते हैं "जनता के मन में उठी जो लहर, / वह अब थमेगी कैसे, कहो जयप्रकाश! / अन्याय का यह साम्राज्य अब टिकेगा कैसे आज?" (तिवारी, 2004)। यह स्वर लोकतंत्र की जड़ों को मजबूत करने वाला है जहाँ कवि समर्थन देने के साथ ही जनता के संघर्ष को वैचारिक दिशा भी प्रदान करता है। नागार्जुन का कवि मन हमेशा उस पक्ष में खड़ा दिखाई देता है जो कमजोर, वंचित, शोषित है। स्वतंत्रता के बाद जब व्यवस्था के प्रति मोहभंग की स्थिति आई तब नागार्जुन ने जनता के इस मोहभंग को अपनी कविताओं में तीव्र संवेदना के साथ दर्ज किया। उनकी कविता "मैं मिलिट्री का बूढ़ा घोड़ा हूँ" इस मोहभंग का सशक्त प्रतीक है, जहाँ कवि उस सैनिक के माध्यम से बोलता है जिसने देश के लिए सब कुछ न्योछावर कर दिया पर आज उपेक्षित और असहाय है। वे लिखते हैं "अब नहीं दौड़ता रण में, / पर पीठ पर अब भी हैं अपने देश के निशान। / आज जो बैठा हूँ थका–हारा, / तो क्या मैं देश का अपमान हूँ?"। इस कविता में नागार्जुन ने स्वतंत्र भारत की उस त्रासदी को उजागर किया है

जिसमें जनता ने त्याग तो किया लेकिन बदले में सिर्फ वंचना पाई। उनका यह व्यंग्य किसी कटु आक्रोश से नहीं बल्कि गहरी करुणा और नैतिक चेतना से उत्पन्न है। नागार्जुन का कवि हर अन्याय के विरुद्ध जनता के साथ खड़ा होता है वह सत्ता के विरोध में इसलिए नहीं बोलता कि वह विद्रोही है, इसलिए कि वह संवेदनशील जिम्मेदार नागरिक है। राजनीतिक दृष्टि से नागार्जुन का साहित्य एक जागरूक दस्तावेज़ है जो औपनिवेशिक शासन से लेकर स्वतंत्र भारत की राजनीति तक के विकास एवं पतन की कहानी कहता है। 'मनुष्यता का उत्सव' में उन्होंने शोषण एवं हिंसा के विरुद्ध मनुष्यता की रक्षा की पुकार दी "जहाँ मनुष्य रोता है, / वहीं कविता जन्म लेती है / और जहाँ मनुष्य उठ खड़ा होता है, / वहीं इतिहास लिखा जाता है।" नागार्जुन राजनीति सत्ता परिवर्तन का प्रश्न होने कि बजाए समाज की नैतिक पुनर्रचना का माध्यम मानते थे। वे मानते थे कि राजनीति तभी सार्थक है जब वह आम जनता की भलाई से जुड़ी हो। उनके काव्य में जनसंघर्ष का स्वर इसीलिए प्रखर है कि उसमें किसी वाद या विचारधारा की कट्टरता कि जगह जीवन की यथार्थता और मानवीय संवेदना का सम्मिश्रण है। उनकी कविता का संघर्ष बहुआयामी है कहीं वह भूख, गरीबी और शोषण के विरुद्ध है तो कहीं वह मानसिक गुलामी एवं नैतिक पतन के खिलाफ। नागार्जुन का कवि–स्वर करुणा एवं क्रोध दोनों का संतुलित रूप है। वे जनता को उसके अधिकारों के प्रति जागरूक करते हुए यह भी कहते हैं कि केवल सत्ता परिवर्तन से मुक्ति नहीं मिल सकती; जब तक चेतना में परिवर्तन नहीं होगा, समाज न्यायपूर्ण नहीं बन सकता। उनका संघर्ष इसलिए मानवीय है क्योंकि उसमें प्रतिशोध नहीं सुधार की आकांक्षा है। नागार्जुन का राजनीतिक काव्य एक ऐसे जनकवि का साक्ष्य है जिसने शब्दों के माध्यम से समाज को उसकी नैतिक जिम्मेदारी का बोध कराया। वे जनता को यह विश्वास दिलाते हैं कि अन्याय के खिलाफ खड़ा होना केवल अधिकार नहीं बल्कि इसके साथ ही नैतिक कर्तव्य भी है। इस प्रकार नागार्जुन की कविता एक जीवंत जन–प्रतिरोध का दस्तावेज़ है जिसमें भाषा विद्रोही है पर करुणा और आशा से परिपूर्ण। उनका व्यंग्य शस्त्र है पर उसमें रक्त नहीं प्रकाश बहता है। वे जनता के साथ खड़े होकर यह दिखाते हैं कि कविता केवल सुंदरता का नहीं बल्कि साहस का भी पर्याय हो सकती है। नागार्जुन का साहित्य आज भी हमें यह सिखाता है कि जब भी सत्ता अन्याय की राह पर चले तब कवि की जिम्मेदारी है कि वह जनता की आवाज़ बने। उनके शब्दों में "कविता का काम केवल फूल खिलाना नहीं, / काँटे दिखाना भी है।" यही नागार्जुन की राजनीतिक चेतना का सार है जिसने उन्हें भारतीय कविता का सबसे प्रखर जनकवि बना दिया।

लोकभाषा, व्यंग्य तथा काव्य–शिल्प में लोकसंवेदना

बाबा नागार्जुन की भाषा, व्यंग्य तथा काव्य–शिल्प उनकी लोकसंवेदना की सबसे प्रखर अभिव्यक्ति है। नागार्जुन के साहित्य का मूल तत्व ही यह है कि वे जनता की भाषा में जनता के लिए लिखते हैं। उनकी भाषा न तो कृत्रिम साहित्यिक शैली में बंधी है न किसी एक भाषाई मर्यादा में सीमित। उन्होंने मैथिली, अवधी, भोजपुरी, संस्कृत के साथ हिंदी का ऐसा सहज मिश्रण किया कि उनकी कविता एक जीवंत जनभाषा का रूप ले लेती है। उनकी कविताएँ किसी 'काव्य–भाषा' की बनावट होने की जगह आम जन की बोली की सहजता से निकली आवाज़ हैं। इसीलिए नागार्जुन का काव्य ग्रामीण भारत, श्रमिक जीवन एवं लोकजीवन की मिट्टी से जुड़ा हुआ प्रतीत होता है। जैसा कि वे स्वयं कहते हैं "मेरी कविता में जो शब्द हैं, वे खेतों की मेड़ से उठे हैं, / जनता की हँसी और आँसू दोनों को ढोते हैं।" (आहूजा, 1985)। लोकभाषा के प्रयोग से नागार्जुन की कविता जनता के जीवन का दर्पण बन जाती है जिसमें वे अपने सुख–दुख, आशा–निराशा तथा संघर्ष की छवियाँ देख सकते हैं। उनकी लोकभाषा बोली मात्र का रूप नहीं बल्कि सामाजिक चेतना का माध्यम है जो कविता को जीवन के निकट ले आती है। नागार्जुन की कविता की दूसरी बड़ी शक्ति है व्यंग्य, जो उनके जनवादी सौंदर्यशास्त्र का अभिन्न हिस्सा है। उनका व्यंग्य तल्ख़ जरूर है परंतु विनाशकारी नहीं; उसमें जागरण, संवेदना के साथ साथ सुधार की आकांक्षा है। वे शोषक व्यवस्था की परतें बड़ी सहजता से खोलते हैं पर इस तरह कि हास्य एवं कटाक्ष के बीच भी करुणा जीवित रहती है। उनकी कविता 'खिचड़ी विप्लव देखा हमने' इसका उत्कृष्ट उदाहरण है जिसमें कवि जनक्रांति के नाम पर चल रही राजनीतिक नौटंकी का पर्दाफाश करते हैं "खिचड़ी विप्लव देखा हमने, चूल्हे पर रखी रही हांडी / नेता बोले, जनता सोई, रोटी बन न सकी आधी।" (मिश्र, 2010)। उनकी यह कविता राजनीतिक व्यंग्य नहीं बल्कि जन–जीवन के वास्तविक संकट की अभिव्यक्ति है। यहाँ कवि का हास्य उस जनवर्ग की ओर है जो लगातार भूखा और उपेक्षित है, तथा उसकी भूख को 'विप्लव' के नाम पर भुलाया जा रहा है। इसी तरह उनकी प्रसिद्ध कविता 'पत्तन ठाठे मार रहा था' में वे पूँजीवादी समाज की चमकदार सतह के नीचे छिपे शोषण एवं पाखंड पर करारा व्यंग्य करते हैं। वे लिखते हैं "पत्तन ठाठे मार रहा था, भीतर गंध सड़ांध की / बाहर ताजमहली चकाचौंध, भीतर भूख और आँधी।" यह व्यंग्य आधुनिक सभ्यता की खोखली चमक तथा उसके भीतर पलते नैतिक पतन को बेनकाब करता है। नागार्जुन के व्यंग्य की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वह जनजीवन की गहराई से उपजता है। वह किसी विचारधारा की नकल नहीं जनता के दिन प्रतिदिन के अनुभव से निर्मित है। उनका व्यंग्य उस किसान के दुःख को भी आवाज़ देता है जो हर मौसम में हार जाता है और उस मजदूर की करुणा को भी जो पसीने से इतिहास लिखता है। 'मनुष्य की खोज में' कविता में वे कहते हैं "मैंने खोजा मनुष्य को कारखानों की धूल में, / दफ्तरों के कागज़ों में, / खेतों की पथरीली मिट्टी में, / भूख के गीतों में।" यह पंक्ति उनकी मानवीय दृष्टि और लोकसंवेदना की गहराई को प्रकट करती है। यहाँ कवि का उद्देश्य मात्र व्यंग्य करना नहीं मानवीय गरिमा की खोज करना भी है। नागार्जुन का व्यंग्य कटु इसलिए नहीं होता क्योंकि वह नकार से नहीं परिवर्तन की आकांक्षा से उपजता है। वे जनता को अपने अधिकारों के प्रति सजग बनाना चाहते हैं। उनकी कविता किसी वैचारिक उपदेश की तरह नहीं अपितु जनभाषा में कही गई चेतावनी की तरह है जो हृदय को झकझोरती है। काव्य–शिल्प की दृष्टि से नागार्जुन की कविताएँ अत्यंत लयात्मक–संवादात्मक हैं। वे शिल्प को किसी बौद्धिक चमत्कार की तरह नहीं बल्कि अभिव्यक्ति की नैसर्गिकता के रूप में प्रस्तुत करते हैं। उनकी कविताओं में 'पद्य' और 'गद्य' दोनों का सुंदर सम्मिश्रण मिलता है। उनकी शैली में लोकगीतों की सादगी के साथ ही लोककथाओं की व्याख्यात्मकता है। नागार्जुन का काव्य–शिल्प इसलिए भी अद्वितीय है क्योंकि वे लोक–छवियों, मुहावरों, प्रतीकों आदि का सशक्त प्रयोग करते हैं। जैसे, वे गरीबी, भूख या अन्याय के चित्रण में 'खेत', 'चूल्हा', 'हांडी', 'नदी', 'मिट्टी' जैसे प्रतीकों का प्रयोग करते हैं जो उनके काव्य को सीधे जनजीवन से जोड़ देते हैं। उनका शिल्प सहजता में ही सौंदर्य खोजता है एवं जनता की संवेदना को सार्वभौमिक बना देता है। इस प्रकार नागार्जुन की लोकभाषा, व्यंग्य और काव्य–शिल्प तीनों मिलकर उनकी लोकसंवेदना का प्राण तत्व हैं। उनकी कविता जनता की बोली में जनता की बात कहती है, सत्ता के मुखौटों को व्यंग्य से बेनकाब करती है और मनुष्य की गरिमा को पुनर्स्थापित करती है। यही कारण है कि नागार्जुन की कविताएँ आज भी प्रासंगिक हैं वे केवल इतिहास का हिस्सा नहीं अपितु समाज की आत्मा की जीवित ध्वनि हैं।

बाबा नागार्जुन की कविता में जनसंवेदना एवं मानवीय करुणा

बाबा नागार्जुन की कविता में जनसंवेदना एवं मानवीय करुणा वह तत्व हैं जो उनके सम्पूर्ण काव्य–संसार को विशिष्ट बनाते हैं।

नागार्जुन की जनचेतना केवल विद्रोह अथवा प्रतिरोध तक सीमित नहीं है; उसमें करुणा, संवेदना और आशा की गहरी लय निरंतर बहती रहती है। वे पीड़ा को संघर्ष की ऊर्जा में रूपांतरित कर देते हैं। उनके यहाँ जनजीवन के दुःख–संघर्ष सामाजिक यथार्थ के चित्र नहीं मानवीय आत्मा के स्पंदन हैं। नागार्जुन की कविता का सबसे बड़ा गुण यह है कि वह प्रत्येक परिस्थिति में मनुष्य को केंद्र में रखती है वह चाहे किसान हो, मजदूर हो, दलित हो अथवा कोई साधारण नागरिक। वे शोषण, भूख और अन्याय के अंधकार के बीच भी मानवता की लौ जलाए रखते हैं। 'अकाल और उसके बाद' जैसी कविताओं में जब वे लिखते हैं "कई दिनों तक चूल्हा रोया, चक्की रही उदास / कई दिनों तक कानी कुतिया सोई उसके पास" (मिश्र, 1982) तो यह अकाल का दृश्य मात्र नहीं बल्कि मानवीय करुणा का एक जीवंत दस्तावेज़ बन जाता है। यहाँ पीड़ा का चित्रण आक्रोश में नहीं बदलता बल्कि संवेदना के रूप में खिलता है जो कवि को जनता से जोड़ता है। नागार्जुन का कवि मन पीड़ा को महसूस करता है पर उसे असहायता नहीं बनने देता; वह उसे प्रतिरोध की शक्ति में बदल देता है। यही कारण है कि उनके यहाँ करुणा और संघर्ष एक–दूसरे के पूरक हैं। उनकी जनसंवेदना का विस्तार वर्ग, जाति, लिंग आदि की सीमाओं से बहुत आगे तक जाता है। वे उस मनुष्य की बात करते हैं जो समाज की सीढ़ी के सबसे निचले पायदान पर है और जिसे इतिहास ने अक्सर भुला दिया है। उनकी कविता 'मनुष्य की खोज में' में वे लिखते हैं "मैंने खोजा मनुष्य को / कारखानों की धूल में, खेतों की मिट्टी में / और भूख की रुलाई में भी पाया उसे।" यह पंक्तियाँ इस बात को प्रकट करती हैं कि नागार्जुन की संवेदना जीवन के हर स्तर पर व्याप्त है। वे मनुष्य को केवल एक सामाजिक प्राणी के रूप में नहीं, संवेदना, सम्मान एवं अस्तित्व के संघर्ष में लिप्त जीव के रूप में देखते हैं। उनकी कविताओं में करुणा कभी निष्क्रिय नहीं होती बल्कि सक्रिय होती है वह परिवर्तन की आकांक्षा से भरी रहती है। 'भस्म हो गया लोहा' में जब वे कहते हैं "भस्म हो गया लोहा, बची रह गई राख / उसमें भी छिपी है अंगारों की आह" (अग्रवाल, 1998) तो यह प्रतीक करुणा के भीतर सुलगते प्रतिरोध का है। यह करुणा ही नागार्जुन की जनचेतना को ऊँचाई देती है क्योंकि वे जानते हैं कि समाज की सबसे बड़ी शक्ति उसका संवेदनशील हृदय है। नागार्जुन के काव्य में करुणा का स्वर दुख का वर्णन करने के साथ ही मनुष्य की गरिमा एवं आत्मविश्वास की रक्षा का कार्य करता है। उनका जनकाव्य सामाजिक न्याय, समरसता तथा मानवीय समानता की चेतना से ओतप्रोत है। वे किसी वर्ग विशेष या विचारधारा के कवि नहीं, संपूर्ण मानवता के कवि हैं। उनकी कविता 'औरत' में वे लिखते हैं "मैं धरती हूँ, बीज जनूँ, पर फसल कोई और काटे" यह पंक्ति न नारी की व्यथा को व्यक्त करने के साथ ही समाज की असमान संरचना के प्रति करुण विरोध भी व्यक्त करती है। नागार्जुन की करुणा यथार्थवादी है; उसमें भावुकता की जगह अनुभवजन्य गहराई है। उनके यहाँ आशा और प्रतिरोध साथ–साथ चलते हैं वे नकारात्मकता में विश्वास नहीं करते। उनका विश्वास मनुष्य की उस अदम्य जिजीविषा में है जो बार–बार अन्याय के बावजूद उठ खड़ी होती है। यही कारण है कि उनकी कविताएँ हर आंदोलन और हर संघर्ष में उद्धृत की जाती हैं क्योंकि उनमें करुणा के भीतर प्रतिरोध तथा प्रतिरोध के भीतर करुणा बहती है। नागार्जुन की कविताओं में जो मानवता का स्वर है, वह समय की सीमाओं को पार करता है। उन्होंने समाज को यह विश्वास दिलाया कि यदि कोई शक्ति सबसे बड़ी है, तो वह मनुष्य की संवेदना है। वे मानते थे कि कविता का उद्देश्य अन्याय की आलोचना मात्र नहीं अपितु मनुष्यता की रक्षा भी है। इसीलिए उनके यहाँ करुणा, करुणा होकर भी दुर्बल नहीं, बल्कि क्रांति का बीज है। नागार्जुन की जनसंवेदना आज भी उतनी ही प्रासंगिक है क्योंकि वह हमें यह सिखाती है कि मनुष्य का दर्द केवल सहानुभूति नहीं माँगता, सहभागिता चाहता है। यही उनका काव्य–संदेश है "जनता की हँसी में मेरा संगीत है, / उसकी आँखों के आँसू में मेरी कविता।"। नागार्जुन के इस लोक एवं मानवीय दृष्टिकोण ने उन्हें न केवल जनकवि बनाया बल्कि भारतीय कविता में करुणा और प्रतिरोध के जीवंत सेतु के रूप में अमर कर दिया।

निष्कर्ष

बाबा नागार्जुन का साहित्य लोक तथा जनजीवन का साक्षात रूप हैं। वह जनता की आत्मा की धड़कनों से उपजा साहित्य है। उन्होंने कविता को भावनात्मक अभिव्यक्ति का माध्यम के साथ ही सामाजिक कर्म एवं परिवर्तन का साधन बनाया। उनकी कविताएँ यह सिद्ध करती हैं कि लोकचेतना कोई स्थिर परंपरा नहीं, परिवर्तन की ऊर्जा है, जो समय एवं परिस्थिति के अनुसार स्वयं को पुनर्नवा करती रहती है। नागार्जुन ने अपने काव्य में जनता के संघर्ष, उसकी करुणा, आक्रोश तथा आशा को एक साथ समेटा। वे शोषण, अन्याय, विषमता आदि के विरोध में खड़े कवि थे परंतु उनका विरोध केवल विनाश नहीं बल्कि रचनात्मक पुनर्निर्माण का आह्वान था। उनके यहाँ जनसंघर्ष का अर्थ सत्ता अथवा व्यवस्था के खिलाफ विद्रोह कि बजाए व्यापक अर्थों में मानवता का संघर्ष है मनुष्य के आत्मसम्मान, स्वतंत्रता और न्याय की रक्षा का संघर्ष। वे मानते थे कि कविता तभी सार्थक है जब वह जनता की चेतना को जाग्रत करे और अन्याय के विरुद्ध बोलने का साहस दे। इसी कारण उन्होंने कविता को लोकभाषा में, लोक के लिए तथा लोक के माध्यम से लिखा। उनकी रचनाएँ हमें यह सिखाती हैं कि समाज में वास्तविक परिवर्तन तब संभव है जब मनुष्य के भीतर करुणा और विवेक दोनों जीवित रहें। नागार्जुन की लोकचेतना, जनसंवेदना और राजनीतिक दृष्टि एक दूसरे से गुँथी हुई हैं वे मिलकर एक ऐसे कवि का निर्माण करती हैं जिसने साहित्य को जनता के संघर्ष और सपनों से जोड़ा। वे सच्चे अर्थों में 'जनकवि' हैं क्योंकि उन्होंने शब्दों के माध्यम से जनता की आत्मा को अभिव्यक्ति दी, उसकी पीड़ा को स्वर दिया और उसकी आकांक्षाओं को भाषा में ढाला। नागार्जुन का साहित्य आज भी हमें यह सिखाता है कि कविता केवल सुंदरता की नहीं अपितु साहस, करुणा और परिवर्तन की भाषा है। यही उन्हें भारतीय साहित्य में जनचेतना के अमर प्रवक्ता के रूप में स्थापित करता है।

संदर्भ सूची

1. नागार्जुन. (1954). अकाल और उसके बाद. भारतीय ज्ञानपीठ।
2. द्विवेदी, ए. के. (2001). पीपुल्स पोएट नागार्जुन. साहित्य अकादमी।
3. मिश्र, नामवर सिंह. (1982). आधुनिक हिंदी कविता और जनचेतना. राजकमल प्रकाशन।
4. अग्रवाल, रामचंद्र. (1998). बाबा नागार्जुनरू जनकवि की दृष्टि. लोकभारती।
5. तिवारी, सत्यनारायण. (2004). बाबा नागार्जुन का जनवादी सौंदर्यशास्त्र. वाणी प्रकाशन।
6. मिश्र, शंभुनाथ. (2010). हिंदी कविता में व्यंग्य का लोकपक्ष. भारतीय ज्ञानपीठ।
7. आहुजा, जी. एन. (1985). द पीपुल्स वॉयस इन नागार्जुन्स पोएट्री. पीपुल्स पब्लिशिंग।